ॐ

अध्यात्म विचार

और

आत्मभावना

[illegible] व प्रकाशक

ब्रह्मचारी मोतीलाल वर्णी

प्रथम बार प्रति १०००	मार्च १९३०	मूल्य अभ्यास

एक आना पोस्टेज भेजने पर मुफ्त मिलेगी।

Printed by

B. Shiva Kripal at the Vidya Printing Press. Meerut.

* ॐ *

भूमिका

आत्मा के निरंजन निराबाध अनुपम स्वरूप का भले प्रकार जानना अध्यात्म ज्ञान है। ज्ञान दो प्रकार के माने हैं, एक अध्यात्म ज्ञान, दूसरा लौकिक ज्ञान, अध्यात्म ज्ञान में आध्यात्मिक ज्ञान की, और लौकिक पदार्थों की छानबीन में लौकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

हमारी असली शान्ति के बाधक हमारी चिन्ता, स्वार्थ वासना और क्रोध आदिक कषाय हैं, ज्यों ज्यों हमारी इच्छा चिन्ता, स्वार्थ' वासना, क्रोध, आदि शांत होते चले जाते हैं त्यों २ हमारी आत्मा को भी शांति मिलती है।

पहले समय में भारतवर्ष में लोगों की अध्यात्म ज्ञान में जियादा रुचि होती थी और व्यवहारी मनुष्य भी

अध्यात्म ज्ञान की चरचा से अपने को कृतकृत्य समझते थे। मगर वर्तमान काल में इस अध्यात्म ज्ञान की चरचा व अध्यात्म ग्रन्थों के स्वाध्याय का खयाल बहुत कम होगया है और व्यवहार की प्रवृत्ति दिन ब दिन इस कदर बढती जाती है कि जनता मोक्ष मार्ग से वंचित होकर असली धर्म के स्वरूप को भी भूलती जाती है। सो यह काल का प्रभाव है किसी का दोष नहीं है।

मैंने मोक्ष के अभिलाषी सज्जनों के लिये यह अध्यात्म विचार व आत्मभावना पुस्तक में प्रामाणिक पूर्वाचार्यों के कहे हुवे अध्यात्म ग्रन्थों में से आत्मिक रस से भरे हुवे उन श्लोकों का सूक्ष्मता से संग्रह किया है जिससे सब को अल्प समय के स्वाध्याय से आत्मज्ञान व मोक्ष मार्ग की प्राप्ति हो सके।

श्री नेमसार जी के श्लोक १५६ में कहा है कि नाना प्रकार के जीव हैं और नाना प्रकार के जीवों की लब्धियां होती हैं, इस लिये अपने और अन्य के धर्मों का बचनों से वाद विवाद छोड़ कर जो परमार्थ निश्चय के ज्ञाता हैं उनको अपने निश्चय स्वरूप का श्रधान करके अपने हित में परमाद नहीं करना चाहिये, अपना कार्य करते रहना चाहिये क्योंकि यह विचार करके कि सर्व जीव हमारे विचार के होजावें सो कठिन है इस लिये वाद विवाद में पड़ने से कार्य की सिद्धि नहीं होसकती, ऐसा अनुभव करते रहना चाहिये।

वैसे वास्तव में वस्तु धर्म अवाच्य है अर्थात् बचन से नहीं कहा जा सकता परन्तु उसकी सिद्धि करने वाली अनेकांत है और शब्द व्यवहार में वस्तु के अनेकान्त

धर्म को अनुभव करके आत्म धर्म की सिद्धि होती है।

यह संग्रह मुमुक्षु जीवों को आत्म लाभ की प्राप्ति में ऊंच नीच या जातपात का विरोधी नहीं है क्योंकि सबकी आत्मा समान है और सब आत्माओं में आत्म लाभ प्राप्त करने की शक्ति मोजूद है।

* इति *

ब्र० मोतीलाल गर्ग।

* ॐ *

परमात्मने नमः

पहला अध्याय।

यह आत्मा अपने ही द्वारा अपने संसार को करता है और अपने ही द्वारा आपही अपने लिए मोक्ष को करता है, इस कारण आपही अपना शत्रु है और आपही अपना गुरु है। यह निश्चय जानों परता बाह्य निमित्त मात्र है।

ज्ञानार्णव श्लोक ८१।

(२)

आत्मा ही देहादि पर पदार्थों में मोह के बल से अपने आत्मा को संसार में लेजाता है,

अर्थात् जन्म २ में भ्रमण कराता है तथा वही आत्मा अपने आत्मा में ही आत्मापने की बुद्धि की महिमा के वश में अपने को निर्वाण में भी लेजाता है अर्थात् कर्मों से छूट जाता है, इस कारण से निश्चय से आत्मा का गुरु अर्थात हितकारी शिक्षक व शत्रु आत्मा ही है।

समाधि शतक श्लोक ७५।

(३)

मोही जीव ही स्त्री, पुत्र, देह, आदि में विश्वास कर लेता है कि यह मेरे हैं, मैं इनका हूं। यह ही आत्मा के लिए भय का स्थान है और जिस परमात्मस्वरूप के अनुभव से डरता है उसके सिवाय दूसरा कोई आत्मा के लिये

संसार के दुःखों में बचने का निर्भय स्थान नहीं है। समाधि शतक श्लो० २९

(४)

जो जीव शरीरादि जड़ को निज समझ कर अहंकार करता है कि यह पुत्र, स्त्री, धन, आदि मेरे हैं, ऐसी जो भावना करता है सो मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या दर्शन है। ऐसे जीवों को बाहिरात्मा कहा है सो यह बाहिरात्मा संसार में भ्रमण किया करता है।

स्वानुभव दर्पण श्लो० ७

(५)

ज्ञानमई आत्मा को छोड़ कर जो अन्य पदार्थों का ध्यान करते हैं वह अज्ञानी हैं उनको

आत्मिक ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि जो महा निर्मल केवल ज्ञान आदि अनन्त गुण रूप आत्मद्रव्य को छोड़ कर पर पदार्थों में ध्यान लगाते हैं वह अज्ञानी हैं।

परमात्म प्रकाश श्लोक २८९

(६)

जो ध्यानी पुरुष निर्विकल्प समाधि में मन थिर करता है उसी का मोह शीघ्र छूट जाता है और उसी को लोकालोक का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

परमात्म प्रकाश श्लो० २९५

(७)

जो जीव निश्चय से ज्ञान स्वरूप परमात्मा को अपने द्रव्य स्वरूप में संयुक्त जानता है और

पर पुद्गलादि अचेतन पदार्थों को जड़ रूप जान कर आत्मा से भिन्न अचेतन द्रव्य रूप संयुक्त जानता है वह जीव मोह का नाश करता है और वही भेद विज्ञानी स्वपर विवेकी है।

प्रवचनसारगाथा ८९

(८)

जो आत्मा निज रूप और पुद्गल आदि रूप का विचार करके शरीर आदि से ममत्व भाव छोड़े है और ज्ञान दर्शनमयी निज चेतन रूप को ध्यावे है सो जीव अन्तर,आत्मा व निर-मोही है और वही आत्मज्ञानी है। जन्म, जरा, मरण, रूप तीन प्रकार का खेद दूर करे है।

स्वानुभव दर्पण श्लोक ८

६

(९)

भेद विज्ञान निरंतर धारा प्रवाह रूप जिस में कभी अंतर न पड़े ऐसा भावो और जब तक ज्ञान पर भाव से छूट कर अपने स्वरूप में न ठहर जावे जब तक यह भेद विज्ञान हमेशा भाते रहना चाहिये।

समयसार श्लो० ६ अ० ५।

(१०)

हे जीव तुझे इन वृथा के कोलाहलों से क्या प्रयोजन है। इन कोलाहलों से विरक्त हो और एक चैतन्य मात्र वस्तु को आप अपने में निश्चल तन्मई होकर देख। ऐसे ६ महीना अभ्यास से अपने हृदय में पर विकार से भिन्न तेज प्रताप व प्रकाशमान निज आत्मा को

दर्शन होगा ऐसा नियम है।

समय सार अ० १ श्लो २

(११)

जो कोई सिद्ध हुवे हैं ते सब भेद विज्ञान के बल से भये हैं और जो कर्मों से बन्धे हुवे हैं वह सब भेद विज्ञान के अभाव से बंधे हैं।

समय सार अ० ५ श्लो० ७

(१२)

जिस ने कषायों को शान्त किया है और जो तपस्या कर उत्कृष्ट है तो भी वो लौकिक जनों की संगति से आत्मा ध्यान से गिर जाता है जैसे अग्नि के सम्बंध से जल अपने शीतल स्वभाव को छोड़ कर उष्ण हो जाता है।

इस लिये कुसंगति को त्याग कर गुणों में अपने समान अथवा गुणों में अपने से अधिक इन दोनों की संगति में निवास करो।

परवचनसार गाथा।

(१३)

जो आत्म कल्याण न करे तो आत्म घाती है और कदाचित् घर न तजे मन में ऐसा जाने मैं निर्दोष हूं मुझको पाप नहीं सो वह मलीन है, पापी है—जैसे सफेद वस्त्र शरीर के संजोग से मलीन होवे है और निश्चय से इस शरीर सेव शरीर के सम्बंधियों से वियोग होवे हीगा इस लिये इनसे मोह करना नहीं चाहिये।

पद्मपुराण पत्र ४२४।

(१४)

आचार्य कहते हैं बहुत कहने से क्या और इन विकल्पों में क्या सिद्धि है, वास्तव में जो परमार्थ है वही एक निरन्तर अनुभव करना, क्योंकि निश्चय से अपने आत्मा का ही अनुभव करना चाहिये।

समयसार अ० १ श्लो० ५१

(१५)

सम्यक् दृष्टि विचार करता है कि जो सांसारिक इस लोक सम्बन्धी सुख है वह सब पंचेन्द्री सम्बन्धी विषयों में होने वाला है वास्तव में वह सुख नहीं है किन्तु सुखाभास मात्र है निश्चय से वह दुख ही है इस लिए

वह सुखाभास छोड़ने योग्य है।

पंचाध्यायी श्लोक २३८

(१६)

हे जीव जो तू निर्मल सिद्ध पद को चाहता है तो अपने स्वरूप का विचार कर कि तू कैसी शक्ति वाला है और किस कारण से व्यर्थ कष्ट भोगता है। जब तू निज स्वरूप को जानेगा और अपनी शक्ति की संभाल करेगा तब तुरंत कर्म काट मुक्त होगा और संताप मिटेगा।

स्वानुभव दर्पण श्लोक २६

(१७)

हे आत्मन् जब तक तू यह समझता रहेगा कि मैं रूपवान हूं, सुन्दर हूं, युवा हूं,

शूरवीर हूं, धनवान हूं, और विद्वान हूं, इन विकल्पों में फंसा रहेगा तब तक तुझे आत्मा स्वरूप की प्राप्ति नहीं होसकती।

स्वानुभव दर्पण

(१८)

संसार में चेतन तथा अचेतन दो प्रकार के तत्व हैं इनमें से पर पदार्थों से भिन्न जो विचार पूर्वक चेतन को ग्रहण करता है सो विवेकी है। पद्म नन्दि पचीसी श्लो० ७३

(१९)

निश्चय से चिन्ता रहित ध्यान ही मुक्ति का कारण है आंखों के खुले हुवे रखने से या बन्द रखने से ध्यान की सिद्धि नहीं है, परन्तु

जो निश्चिन्त चिन्ता रहित निजात्मा में स्थित है उसको स्वयमेव परम गति अर्थात् मोक्ष मिलती है। परमात्म प्रकाश श्लो० ३००

(२०)

आत्मा को आत्मा ही द्वारा आत्मा में ही शरीर से भिन्न विचारना कि जिससे फिर यह आत्मा स्वप्न में भी शरीर की संगति को प्राप्त न हो अर्थात् ऐसी दृढ़ भावना हो जिससे स्वप्न में भी शरीर में आत्म बुद्धि न हो इसी से ध्यान की सिद्धि है। ज्ञानार्णव श्लोक ८६

(२१)

जीवों के चित्त की वृत्ति एक समय में विरुद्ध दो कार्यों में नहीं लग सकती जिस

समय मन विषयों में फंसा रहेगा उस समय आत्महित के कार्य उसे अच्छे नहीं लगेंगे और जिस समय आत्महित की तरफ मनका झुकाव होगा उस समय विषय कषाय विष की तरह बुरे लगेंगे।

समाधिशतक श्लो०

(२२)

हे जीव तू किसी देश में जा और जो चाहे सो तप कर मगर जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होगी तब तक मोक्ष नहीं होगी। भावार्थ बड़ाई प्रतिष्ठा, पर वस्तु का लाभ और देखे सुने हुए भोगों की वांछा रूप खोटेध्यान जो दृढ़ आत्म ध्यान के शत्रु हैं इनसे जब तक

चित्त रंगा हुआ है अर्थात् विषय कषायों से तन्मई होरहा है तब तक किसी तीर्थ या देश भ्रमण करने से कुछ लाभ नहीं है।

परमात्म प्रकाश श्लोक ११७

(२३)

आचार्य कहते हैं कि परमानन्द स्वरूप शुद्धात्मा की प्राप्ति तो दूर ही रही किन्तु केवल उसकी चिन्ता करने पर ही श्रृङ्गारादि रस विरस होजाते हैं। स्त्री पुत्र आदि की गोष्ठी नष्ट हो जाती है और उनकी कथा आदि कुतर्क दूर भाग जाते हैं तथा इन्द्रियों के विषय भोगभी सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और स्त्री पुत्र आदि की प्रीति तो दूर ही रही शरीर में भी प्रीति

नहीं रहती और बचन भी मौन को धारण कर लेता है और समस्त रागद्वेष आदि दोषों के साथ मन भी नाश को प्राप्त हो जाता है। इस लिए भव्य जिवों को चाहिये कि शुद्धात्मा की चिन्ता ही में निमग्न बने रहें। भावार्थ समस्त बाह्य चिन्ता व संकल्प विकल्प जो मनके धर्म हैं नाश करने पर ही आत्मा की उन्नति वा परमानन्द की प्राप्ति होती है और उसी को ध्यान कहा है।

पद्म नन्दि पचीसी श्लोक १५४

(२४)

यह पुरुष आत्मा को शरीर से भिन्न सुनता हुआ भी और कहता हुआ भी जब तक

भेद विज्ञान में निश्चित नहीं होता या परिपक्वता नहीं होती तब तक कर्म बंध से नहीं छुटता क्योंकि निरंतर भेद विज्ञान के अभ्यास से ही इसका ममत्व छुटता है।

ज्ञानार्णव ८५ श्लो०

(२५)

वीतराग आदि गुण आत्मज्ञान की प्राप्ति के कारण हैं, केवल कायक्लेश करना आत्मज्ञान की प्राप्ति का कारण नहीं है, जिस व्यवहार से परमार्थ सिद्ध हो सके उस व्यवहार को करना चाहिये, बिना परमार्थ जीवों का कल्याण नहीं हो सकता है, मन में केवल एक आत्महित की ही इच्छा होनी चाहिये, दूसरी

नहीं, उस जीव में आत्महित की स्थिति हो सकती है जिसकी कषायें मन्द पड़ गई हों। जिसको सिवाय एक मोक्ष पद के और किसी दूसरे पद की इच्छा न हो और संसारियों की सी परणति न हो।

परमात्म प्रकाश

(२६)

कोई महा कठिन व्यवहार मोक्ष मार्ग से प्रतिकूल काय क्लेश आदि क्रियाकाण्डों से स्वयं सम्यक् ज्ञान रहित कष्ट उठावे तो उठावो अथवा कोई व्यवहार मोक्ष मार्ग रूप महाव्रत तप के भार से दीर्घ काल तक पीड़ित होकर कष्ट उठावे तो उठावो, साक्षात् मोक्ष तो एक

क्लेश रहित पद है, ज्ञान स्वरूप है तथा स्वयं अनुभव में आने योग्य है। इस लिए उसकी प्राप्ति ज्ञान गुण के बिना कोई भी किसी तरह से करने को समर्थ नहीं हो सकता।

समयसार अ० ६ श्लोक १०।

(२७)

अपने आत्मा के असली स्वरूप को अपने भीतर देख करके तथा शरीरादि पर वस्तु को अपने आत्मा से बाहर जानकर अपने आत्म-स्वरूप का विचार करते रहना चाहिये।

सामधि शतक श्लो० ७९

(२८)

हे भव्यजीवो निश्चय से चेतन स्वरूप ही

जानने योग्य है, तथा उसी ही की एक कथा सुनने योग्य है, और वही देखने और अनुभवने योग्य है किन्तु उससे भिन्न कोई भी वस्तु न जानने योग्य है न सुनने योग्य है और न देखने व अनुभवने ही योग्य है ऐसा समझना चाहिये

पद्मनन्दि पचीसी अ० ४ श्लो० २१

(२६)

गुरु के उपदेश से तथा वैराग्य के अभ्यास से जिसको पाकर योगी कृतकृत्य होजाते हैं वह यही चेतन स्वरूप तेज है और कोई नहीं है।

प० अ० ४ श्लो० २२

(३०)

वही एक चेतन स्वरूप आत्मा नमस्कार करने योग्य है, तथा वही मङ्गल स्वरूप है और वही सब पदार्थों में श्रेष्ठ है तथा वही सब जीवों का शरण है।

प० अ० ४ श्लो० ४०

(३१)

चेतन के एकत्व का जो ज्ञान है वह अत्यन्त दुर्लभ है और वह ज्ञान ही मोक्ष का देने वाला है इस लिए यदि किसी रीति से इस चेतन का ज्ञान होजावे तो बार बार उसका चिन्तवन करना चाहिये।

प० अ० २२ श्लोक ४

(३२)

जहां आत्म स्वभाव का अनुभव, उसी की ओर हृदय का आकर्षण तथा उस पर विश्वास है और प्रवृत्ति भी उसी ओर लगरही है वहां वास्तव में सम्यक्त्व अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

दूसरा अध्याय।

(३३)

जो कोई मुमुक्षु आत्मा है और इस भयानक संसार के शुभ अशुभ समस्त बचनों की रचनाओं को हटा कर और अज्ञानी मनुष्यों के द्वारा की हुई निन्दा के भय को छोड़ कर तथा सम्पूर्ण लौकिक बचन के जालों को दूर करके

अपने आत्मा का अनुभव करता है उसी को आत्मा की प्राप्ति होती है। नियमसार गाथा० १५५

(३४)

जिस मनुष्य ने एकाग्र चित्त से इस चैतन्य स्वरूप आत्मा की बात भी सुनली है वही पुरुष मुक्ति का निश्चय से पात्र होता है। इस लिए मोक्ष अभिलाषियों को अवश्य इसी चैतन्य स्वरूप आत्मा का अनुभव करना चाहिये।

पद्म० अ० ४ श्लोक २३

(३५)

जो मनुष्य कर्मों से भिन्न एकता रूप उस परम ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म रूप ही हो जाता है इस लिये मनुष्यों को उस परमब्रह्म

अर्थात् अपनी आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये। प० अ० ४ श्लो० २४

(३६)

मैं शुद्ध चिन्मात्र से अन्य जो पर द्रव्य है उनका नहीं हूं और न मेरे पर द्रव्य हैं इस लिये इस लोक में मेरा कुछ भी नहीं है। इस तरह निश्चय करता हुवा पांच इन्द्रियों का जीतने वाला आत्मा का जैसा कुछ स्वयं सिद्ध स्वरूप है उसको धारण करता है। प्र० अ० २ गाथा ४।

(३७)

जो शरीरादिक भाव हैं वे आत्मा से भिन्न हैं और अशुद्धता के कारण हैं वे आत्मा के अहित करने वाले और विनाशीक हैं और

आत्मा अनादि अनन्त है निश्चय से सिद्ध स्वरूप है, ज्ञानदर्शनमयी है और ध्रुव है इस में शरीरादि पर द्रव्यों का न ग्रहण करके शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त होता हूं। प्र० गाथा १०१ अ० २

(३८)

हे भव्य पुरुषो तुम कुछ भी चेष्टा मत करो, मत कुछ विचार करो, जिससे आत्मा अपने में ही लीन हो, तो यही उत्कृष्टध्यान होवे है, भावार्थ— न तो कोई कुछ उपाय करो, न किसी का चिंतवन करो, एक मात्र आत्मा ही में लीन होना सो ही उत्कृष्ट ध्यान है।

द्रव्य संग्रह गाथा ५६

(३९)

जो मनुष्य चेतन स्वरूप आत्मा का ध्यान

करते हैं उनका कर्म रूपी वैरी कुछ नहीं कर सकते इस लिये भव्य जीवों को अपनी आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

पद्मनन्दि पचीसी अ० ४ श्लो ४८

(४०)

निश्चय मे तो एकता रूप जो अद्वैत है वही मोक्ष है और व्यवहार नय से कर्मों कर किया हुआ जो द्वैत है वही संसार है।

प० अ० ४ श्लो० ३२

(४१)

मैं बंधा हुवा हूं तथा मैं मुक्त हूं इस प्रकार के द्वैत के होते हुवे निश्चय से द्वैत होता है इस प्रकार के दोनों विकल्पों से रहित जीव मुक्त होता है। प० अ० ४ श्लोक ४७

(४२)

जैसे लोहे में लोहमयी पात्र की उत्पत्ति होती है तथा सुवर्ण में सुवर्णमयी पात्र की उत्पत्ती होती है वैसे ही द्वैत में निश्चय से द्वैत ही होता है तथा अद्वैत से अद्वैत ही होता है।
प० अ० ४ श्लोक ३१

(४३)

असल में आत्मा का कोई नाम नहीं है वह नाम रहित ही है और जो जन्म मरण आदिक धर्म हैं सो सब शरीर के ही धर्म हैं ऐसा बड़े २ विद्वान कहते हैं। प० अ० ४ श्लोक ३६

तीसरा अध्याय।

(४४)

समस्त धर्म का मूल भावना है। भावना से ही परमाणुओं की उज्ज्वलता होवे है, भावना

से मिथ्या दर्शन का अभाव होवे है, भावना से व्रत में दृढ़ परणाम होवे हैं, भावना से वैराग्य की वृद्धि होवे है, भावना से अशुभध्यान का नाश होवे है, इस लिए निरंतर भावना करते रहना चाहियें। रत्न करण्ड श्रावकाचार

(४५)

मिथ्या भ्रांति को छोड़ कर सम्यक् दृष्टि मन वचन काय की क्रियाओं को वश में करता हुआ अपने स्वरूप की भावना करता है। पूर्व में जीव ने अनादिकाल से मिथ्या आदि भावों को भाया है तथा सम्यक्त आदि भावों को कभी नहीं भाया। इस पर श्री गुणभद्र स्वामी ने भी कहा है कि इस संसार के चक्र में इन

भावनाओं की भावना करता हूं जिनको मैंने पहले कभी नहीं भाया इस संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए जीव ने कोई भी निर्वृत्ति अर्थात् मोक्ष का कारण रूप भाव है उसको कभी भी नहीं भाया है ये बड़े कष्ट की बात हैं चाहे इस ने भव २ में उस तत्व को वचन मात्र सुना व कहा भी हो परन्तु वह मोक्ष का कारण रूप भाव सर्वदा एक आत्म ज्ञान ही है। नियमसार गाथा ९०

(४६)

न तो मैं नारकी हूं न मैं तिर्यंच हूं मनुष्य तथा देव पर्याय वाला भी नहीं हूँ न मैं इनका करता हूं न करने वाला हूं और न करने की अनुमोदना करने वाला हूं। न मैं मार्गना स्थान हूं न गुण स्थान हूं न जीव समास हूं न मैं इन

भावों का कर्त्ता हूं न कराने वाला हूं न मैं कर्ताओं की अनुमोदना करने वाला हूं, न मैं बालक हूं न मैं बूढ़ा हूं, न मैं जवान हूं, और न उनका कारण हूं, न मैं उनका कर्ता हूं और न कराने वाला हूं और न इनके करने वालों की अनुमोदना करने वाला हूं। न मैं राग रूप हूं न द्वेष रूप हूं, न मोह रूप हूं, न इन भावों का कारण हूं, न मैं इनका कर्त्ता हूं, न कराने वाला हूं और न अनुमोदना करने वाला हूं। न मैं क्रोध रूप हूं, न मान रूप हूं, न माया रूप हूं और न कभी लोभ रूप होता हूं और न मैं इनका कर्ता हूं, न कराने वाला हूं, न करने की अनुमोदना करने वाला हूं। ऐसी भावना निरंतर भावनी चाहिये। नियमसार गाथा ७७, ७८, ७९, ८०, ८१

मैं इस हाड़ चाम मल मूत्र आदि भरे हुवे शरीर से जिसका नाम लेते व सुनते और चिंतवन करने में घृणा उपजती है अलग हूं, और नाना प्रकार के मन में जो विकल्प उठते हैं उनके सर्व समूह से भी अलग हूं, और क्षुधा आदिक वा पुद्गल के सर्व विकारों से भी अलग हूं क्योंकि मैं तो एक चेतन मूर्ति हूं और इन तमाम उपाधियों से अलग व निर्मल हूं, और सर्व कषायें आदिक से जुदा व शान्त हूं और सदा काल आत्मिक अतुल सुख का भजने वाला हूं, जिसका इस प्रकार श्रद्धान दृढ़ होगया है और समता भाव से

सर्व आरंभ आदिक छूट गया है ऐसे पुरुष का जब संसार का ही भय नहीं रहा है तो अन्य का भय क्या होसकता है।

भावार्थ जिस पुरुष के इस पूर्वोक्त प्रकार आत्म स्वरूप के विचार में संसार का भय जाता रहा है तो अन्य भय आदिक ऐसे पुरुष के कहां ठहर सकता है अथवा नहीं ठहर सकता ऐसी निरंतर भावना करनी चाहिये।

पद्म नन्दि पचीसी श्लोक ४८

जिस चैतन्य रूपी तेज का मन में चिंतवन नहीं हो सकता और वाणी से भी वर्णन नहीं कर सकते हैं और जो शरीर से सर्वथा भिन्न है और केवल स्वानुभव से ही जाना

जाता है इस लिए अपने चेतन रूप का अनुभव करता हूं। पद्मनन्दि पचीसी अ० ११ श्लो० २

(४९)

मैं शरीर आदिक सर्व वस्तुओं से भिन्न हूं आत्म द्रव्य किसी में नहीं मिलता। परमार्थ दृष्टि से कोई द्रव्य किसी द्रव्य में नहीं मिलता सदा भिन्न रहता है इस लिए मैं शुद्ध हूं ज्ञान स्वरूप हूँ चेतनात्मक हूं। प्रवचनसार

(५०)

मैं निश्चय से अलख हूं अमूर्तिक हूं अविनाशी हूं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं जन्म मरण से रहित हूं और स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि पुद्गल के धर्मों से अलग हूं अतीन्द्री हूं, सूक्ष्म हूं साक्षी रूप आत्मा हूं ब्रह्म हूं शान्त